Journal of Interdisciplinary and Multidisciplinary Research (JIMR)
E-ISSN:1936-6264| Impact Factor: 6.886|
Vol. 16 Issue 12, Dec- 2021
Available online at: https://www.jimrjournal.com/
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

हिन्दी साहित्य में सगुण-निर्गुण विवाद

-डॉ. अंजनी कुमार श्रीवास्तव
सह-आचार्य, हिन्दी विभाग,
महात्मा गाँधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी

आजहिन्दी साहित्य में सगुण और निर्गुण भक्ति दो भिन्न विरोधी धाराओं के रूप में दिखाई देती है । लेकिन, वास्तव में ऐसा है नहीं । दोनों के बीच वैषम्य की तुलना में साम्य अधिक है। सगुण और निर्गुण भक्ति के बीच आज जो अंतराल दिखाई देता है वह बिलकुल आधुनिक निर्मिति है ।ऐसा प्रतीत होता है कि सबसे पहले आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने साहित्येतिहास ग्रंथ में भक्तिकाल को सगुण और निर्गुण दो धाराओं में विभाजित किया।लेकिन, इस विभाजन की पृष्ठभूमि प्राच्यवादी अध्येताओं द्वारा तैयार की जा चुकी थी।मोनियरविलियम्स के ब्राह्मणवाद और हिंदूवाद के रूप में हिंदू धर्म को विभाजित करने का भी इस पर असर हो सकता है। इसके अतिरिक्त यूरोप में धर्म और दर्शन के बीच जो अंतराल रहा उसके प्रभाव को भी इस विभाजन की नींव माना जा सकता है।

मोनियरविलियम्स ने अपनी पुस्तक ‘रिलीजियसथॉट एंड लाइफ इन इंडिया’ में संपूर्ण हिंदू परंपरा को तीन भागों में विभाजित किया--वेदवादब्राह्मणवाद और हिंदूवाद।ब्राह्मणवादवेदवाद का ही विस्तार था जबकि हिंदूवाद बाद की स्थिति के लिए व्यवहृत हुआ है।[1]वेदवाद और ब्राह्मणवाद को पूर्णत भारतीय और विशुद्ध माना गया है जबकि हिन्दूवाद को इस्लाम और ईसाइयत तथा अन्य संप्रदायों-मतों से प्रभावित या अविशुद्ध माना गया है।मोनियरविलियम्स के अनुसार “Hinduism is Brahmanism modified by the creeds andsuperstition of Buddhists and Non-Aryan races of all kinds, including Dravidians, Kolarians, and perhaps pre-

---

[1] Monier Williams, Religious Thought and Life in India, MunshiramManoharlal Publishers Pvt. Ltd. Delhi,1974 (see the title and preface)

Kolarian aborigines. It has even been modified by ideas imported from the religions of later conquering races, such as Islam and Christianity.”[2]रामचन्द्र शुक्ल के सगुण को विशुद्ध और भारतीय तथा निर्गुण को अविशुद्ध और विदेशी प्रभावोत्पन्न मानने[3] के पीछे मोनियरविलियम्स का प्रभाव माना जा सकता है ।

पश्चिम में 16 वीं से 18वीं शती के बीच धर्म और दर्शन के बीच अंतराल रहा है ।कांट, ह्यूम आदि दार्शनिकों ने जहाँ परम सत्य या absolutetruthकी बात की वहीं धार्मिक परंपरा में व्यक्तित्वसम्पन्न ईश्वर की अवधारणा थी । कृष्णा शर्मा ने सगुण-निर्गुण विभाजन पर इसका असर स्वीकार किया है।[4]absolutetruthया परम तत्व की बात करने वाली धारा को निर्गुण या ज्ञानवादी मान लिया गया है तथा व्यक्तित्वसंपन्न ईश्वर की धारणा को रिलीजन से अभिहित कर दिया गया है ।एचएचविल्सन ने भक्ति को रिलिजन मानने का संकेत दे ही दिया था[5] आगे इसकी श्रीवृद्धि हुई ।

लेकिन,भारतीय परंपरा में सगुण और निर्गुण का विभाजन पहले भी मौजूद था। उपनिषदों में इस बात के स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं कि ईश्वर के सगुण और निर्गुण दोनों रूप हैं । कहीं ईश्वर को मनोमय,प्राणशरीर,भारूप,सत्यसंकल्पआकाशात्मा और सत्यकाम आदि कहा गया है, तो कहीं अशब्द और अस्पर्श, अरूप, अरस और अगंध।कहीं वह सगुण और व्यक्त कहा गया है तो कहीं निर्गुण और अव्यक्त।[6]मध्यकालीन भक्ति काव्य में भी सगुण और निर्गुण की अलग-अलग धाराओं के संकेत मिलते हैं। सूरदास के उद्धव गोपी संवाद में सगुण-निर्गुण द्वंद्व है, लेकिन सगुण-निर्गुण द्वंद्व के साथ ही सगुण-निर्गुण समन्वय भी मध्यकाल में दिखता है।तुलसीदास के ‘सगुनहिअगुनहिनहिंकछु भेदा’ और सूरदास के ‘निर्गुण कौन देश को बासी’ में क्रमशः समाहार

---

[2] ibid

[3] रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, वि.सं. 2047, पृ.51 तथा पृ. 64

[4] KrishnaSharma, BhaktiandtheBhaktiMovement: ANewPerspective, MunshiramManoharlalPublishersPvt. Ltd., NewDelhi, 1987,pp.15-16

[5] Ibid., p.12

[6] रामचन्द्र शुक्ल, सूरदास, नागरीप्रचारिणी सभा , वाराणसी, वि.सं. 2054,पृ 6-7

और द्वंद्व की स्थिति को देखा जा सकता है। उपासना के समय कई बार सगुण कवि निर्गुण और निर्गुण कवि सगुण की भूमिकाओं में दिखाई देते हैं।सगुणऔर निर्गुण का भेद दार्शनिक स्तर पर मौजूद था इसमें संदेह नहीं, लेकिन यह भेद उतना कठोर नहीं था जितना कि आधुनिक अध्येताओं ने बना दिया है । शंकराचार्य विशुद्ध निर्गुण हैं लेकिन ‘भज गोविंदं’ भजन रचते हैं ।सूरदास सगुण भक्त हैं लेकिन ‘अविगत गति कछूकहत नआवै’ कहते हैं।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने सगुण और निर्गुण का विभाजन किया, लेकिन मुक्तिबोध को इस विभाजन को कठोर बनाने का श्रेय है दार्शनिक विभेद को उन्होंने जातिगत और सामाजिक विभेद के रूप में स्थापित कर दिया ।उनके लिए सगुण भक्ति सवर्णोंका और निर्गुण भक्ति निम्न जातियों का आंदोलन है ।[7]उनकी धारणा से यह भी निष्कर्ष निकलता है कि निर्गुण भक्ति प्रगतिशील है और सगुण भक्ति प्रतिक्रियावादी। लेकिन, यह धारणाअसंगत है। निर्गुण भक्त पीपा राजपूत थे जबकि राम भक्त नाभादासशूद्र । कृष्ण भक्त और अष्टछाप के कवि कृष्णदासशूद्र थे जिन्हें वल्लभ संप्रदाय में बहुत महत्व दिया गया था।भुड्कुडाकी संत परंपरा में तो कई सवर्ण हैं । इस संदर्भ में रामविलास शर्मा की टिप्पणीद्रष्टव्य है-

> निर्गुण उपासना से निम्न श्रेणी के जनों का कोई विशेष संबंध नहीं है। व्यापार और उद्योग से भी उसका कोई विशेष संबंध नहीं है । प्राचीन यूनान के निवासी-- विशेष रूप से एथेंस के निवासी व्यापार में खूब आगे बढ़े हुए थे । वे मूर्ति पूजक थे ।रोमन सौदागर यूरोप, पश्चिम एशिया और भारत से व्यापार करके समृद्ध हुए थे, और वे सगुणपंथी थे। यूरोप में पूंजीवाद का विकास सबसे पहले इटली में हुआ; यूरोप में ‘मध्यकाल’ के बाद पुनर्जागरण की शुरुआत इटली से हुई।वहाँ के गिरजाघरों में मूर्तियों का शिल्प, चित्रों का सौंदर्य संसार में अनुपम है। भारत में अनीश्वरवादी बौद्ध उपासकों ने मंदिरों में भगवान बुद्ध की मूर्तियां प्रतिष्ठित कीं , उनसे सम्बद्धपुराणकथाओं की घटनाएं भितिचित्रों में, प्रस्तरखण्डों में अंकित कीं ।एलोरा, अजंता, मदुरइ,कोणार्क,खजुराहो की शिल्प कला से विभिन्न प्रदेशों के व्यापारी वर्ग का भी संबंध रहा है।[8]

---

[7] ग.मा. मुक्तिबोध, ‘मध्ययुगीन भक्ति आन्दोलन का एक पहलू’, निबन्धों की दुनिया, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007, पृ. 46-47

[8] रामविलास शर्मा, हिन्दी जाति का साहित्य, राजपाल एंड सन्ज, दिल्ली, 1992, पृ. 68-69

काव्य भाषा और शैली की दृष्टि से सगुण और निर्गुण के बीच कुछ शब्दों को छोड़कर प्राय: साम्य मिलता है । संगीत की दृष्टि से विचार करने पर सगुण और निर्गुण दोनों भक्तों के पद राग रागिनियों में आबद्ध हैं । सगुण और निर्गुण के बीच पदों की समानता इस हद तक है कि 'पद सूरदास जी का' में कबीर के पद मिलते हैं और मार्कोंडेलाटुम्बा को तुलसीकृत रामायण कबीर पंथी रामायण प्रतीत होती है। रामचंद्र शुक्ल ने माना है कि सगुणऔर निर्गुण का विभाजन 15 वीं शती के अंत से लेकर 17वीं शताब्दी के अंत तक दिखता है ।[9]वारकरी संप्रदाय में विट्ठल की मूर्ति पूजा भी प्रचलित है तथा वह निर्गुण भी कहलाते हैं, इसे देखकर रामचंद्र शुक्ल का कथन उचित प्रतीत होता है । परवर्ती भक्तों में सांप्रदायिक सिद्धांत ग्रंथों की चाहे जो स्थिति रही हो, काव्य में स्पष्ट रूप से निर्गुण और सगुण का भेद समाप्त दिखता है । उदाहरण के लिए दरिया साहब की रामायण को देखा जा सकता है जो अवधी भाषा में भोजपुरी की छौंक के साथ रची गई है । इस पर तुलसीदास के रामचरितमानस का प्रभाव है ।ऐसे ही गुरु गोविंद सिंह अपने कई पदों में सगुण कृष्ण भक्त प्रतीत होते हैं—

स्याम गए तिजिकैब्रिज को ब्रिजलोगनकौ अति ही दुख दीनौ।

उद्धव बात सुनो हमरीतिहकेबिनुभ्यौहमरोपुरदीनौ।।

दैबिधिनैहमरे गृह बालक पाप बिना हम तै फिर छीनौ।।

यो. कहि सीस झुकाई रह्यो बहु सौकबढ्यो अति रोदनकीनौ।

(दशम ग्रंथ, पृ. 373)

15 वीं से 17 वीं शती के बीच यद्यपि सगुण-निर्गुण का कुछ विभेद मिलता है, पर भक्तमाल जैसे ग्रन्थ भी मिलते हैं, जिनमें सगुण और निर्गुण का विभेद एकदम नहीं है ।भक्तमाल में सगुण और निर्गुण भक्तों को बिना किसी विभेद के स्वीकार किया गया है । सगुण और निर्गुण भक्तों की साधना परंपरा में उतना भेद नहीं है कि दोनों एक दूसरे से संवाद न कर सकें । दोनों ने एक दूसरे को प्रभावित भी किया है ।शिवप्रसाद सिंह के अनुसार "भ्रमवश ऐसा मान लिया

---

[9] रामचन्द्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, उपर्युक्त, पृ. 39

गया है कि सूरदास तथा अन्य अष्टछापी कवियों के साहित्य में निर्गुण की जो विडम्बना की गयी है वह इस बात का सबूत है कि ये कवि निर्गुण मत के कवियों से प्रभावित नहीं हुए और उनका भक्तिकाव्य बीच के इन संत कवियों से सम्बन्धित न होकर जयदेव और विद्यापति से जोड़ा जाना चाहिए । मैं यह कदापि नहीं कहता कि जयदेवविद्यापति का प्रभाव नहीं पड़ा, किन्तु संत कवियों ने सगुण मतवादी कृष्ण काव्य के निर्माण में जो महत्त्वपूर्ण योग दिया है उसे कभी अस्वीकार नहीं किया जा सकता । इन कवियों की भक्ति सम्बन्धी कविताओं की बहुत-सी बातें सीधे निर्गुण मतवादी कवियों की परंपरा से प्राप्त हुई ।”[10] निर्गुण संत कवियों ने भी सगुण परंपरा से बहुत कुछ ग्रहण किया है ।सतनामी सम्प्रदाय के दूलनदास की अभिव्यक्ति तो ज्यादातर सगुण भाव में पगी है—

जब गज अरघ नाम गुहरायो।

जब लगिआवेदूसरअच्छर, तब लगिआपहुधायो।।

पायपियादे में करुनामय, गरुडासन बिसराये ।

धाई गजेद गोद प्रभु लीन्हों, आपनि भक्ति दिढाये।

--कल्याण, संतवाणी अंक , पृ. 229

साम्प्रदायिकगठन की दृष्टि से सगुण और निर्गुण परंपरा में अंतर माना जाता है। कुछ शोध बताते हैं कि सगुण संप्रदाय और राजसत्ता के बीच जैसा संबंध है वैसा निर्गुण संप्रदाय और राजसत्ता के बीच कम दिखाई देता है।[11]लेकिन, निर्गुण संप्रदायों में प्रणामी संप्रदाय का संबंध राजसत्ता से था।कबीरपंथ का संबंध भी राजसत्ता से था, अन्यथा नवाब बिजली खां तलवार खींचकर कबीर के शव पर कब्जा करने की कोशिश न करते ।दरिया पंथ को मीर कासिम का वरद हस्त हासिल था ही इसलिए राज सत्ता से सगुण और निर्गुण दोनों का संबंध था।

---

[10] शिवप्रसाद सिंह, सूर-पूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य, हिन्दी प्रचारक प्रतिष्ठान, वाराणसी,

[11] टाइलरवाकरविलियम्स, ‘मध्यकालीन भक्ति सम्प्रदायों के टकरावों का भौतिक आधार’, सं. राजेन्द्र कुमार, *बहुवचन*, अंक-24, जनवरी-मार्च 2010, पृ.66

ऐसा कहा जाता है कि आख्यानपरकशैली के कारण सगुण को जो लाभ हासिल था वह निर्गुण को हासिल नहीं था-“आख्यानपरक शैली ऐसा ही एक विमर्शात्मक उपकरण थी । सगुण इष्टदेव को लेकर आख्यानपरक शैली के पाठ रचे जा सकते थे--भक्ति आन्दोलन में इसके सबसे प्रमुख उदाहरण हैं सूरसागर, गीतगोविन्द और रामचरितमानस—जो निर्गुण ईश्वर के प्रसंग में एकदम असम्भव थे । मिसाल के तौर पर आख्यानपरक शैली को लेकर सगुण सम्प्रदाय कई प्रदर्शन शैलियों का इस्तेमाल कर सकते थे –नाट्य, लोक-नाटक, नृत्य इत्यादि। इन सम्प्रदायों ने बहुत सफलता के साथ रामलीला, कृष्णलीला, रास और गरबा तथा अनेक उत्सवों का इस्तेमाल अपने सामाजिक आधार को मजबूत बनाने के लिए किया ।”[12] लेकिन,भक्तमाल आदि की भी नाट्य प्रस्तुति होती थी जिसमें निर्गुण भक्त हिस्सा ले सकते थे । कीर्तन मंडलियों के द्वारा उनकी भी लोक में प्रस्तुति हो सकती थी ।अत: यह कोई बड़ा आधार नहीं है जिससे यह कहा जाए कि सगुण भक्ति को लाभ हासिल था । भक्त के चरित्र का वर्णन तो हो ही सकता था और होता भी था । निर्गुण भक्तों की समाधि पर मेले आदि की भी परंपरा थी ।जागर भी लगती थी । अतः कोई बड़ा अंतर इसे लेकर नहीं माना जाना चाहिए ।

निर्गुण संतों और सगुण भक्तों से सम्बद्ध किंवदंतियों में उपस्थित जीवन विन्यास में डेविडलॉरेंजन ने अंतर माना है । उनके अनुसार “..सगुण और निर्गुण संतों के जीवन के बीच बहुत भिन्नता पायी जाती है ।उदाहरण के लिए सगुण संतों के जन्म की कहानियों में शायद ही उनकी निम्न जाति की पैदाइश को नकारने की कोशिश की गयी है। इसका कारण बहुत स्पष्ट है। अधिकतर सगुणी संत ब्राह्मण हैं जबकि अधिकांश निर्गुण संत कारीगर या ‘निम्न क्षत्रिय’ जातियों से आते हैं। इसी कारण सगुण संतों का उनके विरोधियों से बहुत कम सामना होता है।अक्सरनिम्नवर्गीय संत ही धार्मिक और राजनीतिक सत्ता के घमंडी शासकीय प्रतिनिधियों द्वारा अन्यायपूर्ण परीक्षा के विषय बनते हैं।राजा अक्सरसगुण संतों के प्रति सहानुभूतिशील होता है जबकि उनके विरोधी या तो ब्राह्मण (जिसके साथ वे शिष्टतापूर्वक बहस करते हैं) या नीचविधर्मी होते हैं, जो कि शक्ति के द्वारा खत्म किए जाते हैं (या तो संतों की चमत्कारिक

---

[12] वही, पृ.68

शक्ति द्‌वारा या उनके राजकीय सहयोगियों की भौतिक शक्ति द्‌वारा) ।"[13] ऐसा कहना की सगुण संतों का उनके विरोधियों से कम सामना होता है उचित प्रतीत नहीं होता ।तुलसीदास के विरोधी कम नहीं थे। किंवदंतियों में यह भी मिलता है किजहांगीर ने उन्हें कारागार में डाल दिया था।[14]कई किंवदंतियाँ तो ऐसी भी मिलती हैं जिनमें एक निर्गुण संत को दूसरे संत से श्रेष्ठ सिद्‌ध किया जाता है। इस तरह डेविडलॉरेंजन की धारणा बहुत संगत प्रतीत नहीं होती।

वस्तुतः ईश्वर की सगुण रूप में भी आराधना की गयी और निर्गुण रूप में भी ।सगुण और निर्गुण के बीच एक दार्शनिक विभेद भी रहा है। किन्तु, पश्चिम से प्रभावित आधुनिक अध्येताओं ने इसे सामाजिक और विचारधारात्मक विभेद के रूप में स्थापित कर दिया है।सगुण और निर्गुण के बीच सांप्रदायिक अंतर मात्र है, इससे अधिक विभेद मानना अनुचित है ।विशेषतौर पर जातिगत विभाजन के रूप में सगुण और निर्गुण को व्याख्यायित करना असंगत प्रतीत होता है ।

---

[13] डेविडलॉरेंजन, निर्गुण संतों के स्वप्न(अनु. धीरेन्द्र बहादुर सिंह), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ.107

[14] उदयभानु सिंह, तुलसी-काव्य-मीमांसा, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008, पृ.173